परिशिष्टि

बौद्ध धर्म का संक्षिप्त इतिहास
भारत से जापान तक

1. भारत

मानवजाति के आध्यात्मिक इतिहास में, वह सबसे युगप्रवर्तक शताब्दियों में से एक थी, जब भारत के मध्यदेश में 'एशिया का प्रदीप' प्रज्वलित हो उठा था; अथवा, दूसरे शब्दों में कहें तो जिस समय वहाँ महाप्रज्ञा और महाकरुणा का एक स्रोत फूट निकला, जो बाद की गई शताब्दियों तक एशियावासियों के हृदयों को तृप्त करता रहा; और आज भी कर रहा है।

गौतम बुद्ध, जो बाद में बौद्ध अनुयायियों द्वारा शाक्यमुनि अथवा 'शाक्यों के ऋषि' कहलाने लगे, गृहत्याग कर श्रमण बन गए और दक्षिण की ओर मगध के लिए चल पड़े। ऐसा माना जाता है कि ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने बोधि-बृक्ष के नीचे सम्यक्संबोधि प्राप्त की। तब से लेकर महापरिनिर्वाण तक के पैंतालीस वर्ष वे निरन्तर प्रज्ञा और करुणा का उपदेश करते हुए भ्रमण करते रहे। परिणामस्वरूप उसी शताब्दी के अन्त तक भारत के मध्यदेश के विभिन्न राज्यों और जनपदों में बौद्ध धर्म के सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण हुआ।

मौर्य वंश के तीसरे राजा सम्राट् अशोक के काल में (शासनकाल 268-232 ई. पू.) बुद्ध के उपदेश का प्रचार सारे भारतवर्ष में हुआ और देश की सीमाएँ लाँघकर

दूर विदेशों में भी उसका प्रसार होने लगा।

मौर्य साम्राज्य भारत का पहला सार्वभौम साम्राज्य था। इसके पहले सम्राट् चन्द्रगुप्त (शासनकाल लगभग 317-293 ई.पू.) के शासनकाल में ही यह साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर, पूर्व में बंगाल के उपसागर तक, पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत और दक्षिण में विंध्य पर्वत के उस पार तक के विस्तृत प्रदेशों में फैल चुका था। सम्राट् अशोक ने कलिंग और दूसरे राज्यों को जीतकर इस साम्राज्य की सीमा दक्षिणापथ तक बढ़ाई।

कहा जाता है कि राजा अशोक का स्वाभाव पहले बहुत ही उग्र था, इसलिए लोग उसे चण्डाशोक कहते थे; किन्तु बाद में जब उसने कलिंग के युद्ध में भयानक जनहानि देखी तब उसके स्वभाव में पूर्ण परिवर्तन हुआ और वह बुद्ध के प्रज्ञा और करुणा के उपदेश का परम भक्त बन गया। उसके पश्चात्, एक बौद्ध धर्मानुयायी के रूप में उसने बहुत से अच्छे कार्य किए, जिनमें नीचे के दो कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

पहला था प्रसिद्ध 'अशोक के शिलालेख' अर्थात् शीर्षस्तभों अथवा पालीश की गई चट्टानों पर खोदे गए बौद्ध धर्म पर आधारित प्रशासकीय आदेश, जो सम्राट् के आदेशानुसार कई स्थानों पर लगवाए गए और बुद्ध के उपदेश के प्रचार में सहायक सिद्ध हुए। द्सरा, सारे भारत में बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ-साथ, उसने अपने देश की सीमा के पार चारों दिशाओं के विभिन्न देशों में धर्मप्रचारक भेजकर प्रज्ञा और करुणा का उपदेश सम्प्रेषित किया। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कई धर्मप्रचारक तो सिरिया, मिस्र, किरीन, मैसीडोनिया तथा इपिरस जैसे सुदूर देशों तक भेजे गए और इस प्रकार बौद्ध धर्म व्यापक रूप से पश्चिमी जगत में प्रचारित हुआ। साथ ही, उस समय, ताम्रपर्णी अर्थात् श्रीलंका को भेजा गया दूत महेन्द्र 'सुन्दर लंकाद्वीप में सुन्दर उपदेश स्थापित करने' में सफल हुआ और इस प्रकार उस द्वीप में दक्षिणी बौद्ध धर्म कहे जाने वाले स्थविरवाद की नींव डाली गई।

2. महायान बौद्ध धर्म का उदय

परवर्ती बौद्धों द्वारा बार-बार 'बौद्ध धर्म की पूर्वाभिमुखता' की बात कही जाती है। किन्तु ईसा पूर्व के कई शतकों में स्पष्ट रूप से बौद्ध धर्म का मुख पश्चिम की ओर मुड़ा हुआ था। लगभग ईसवी सन् के कुछ पहले या आरंभ में बौद्ध धर्म का मुख पूर्व ओर मुड़ने लगा। किन्तु, इसकी चर्चा करने से पहले हमें बौद्ध धर्म में, जो एक महान परिवर्तन आ रहा था उसकी बात करनी होगी। वह परिवर्तन था 'महायान बौद्ध धर्म' कहलाने वाली एक 'नई लहर', जो उस समय एक विशिष्टता लिए हुए अस्तित्व में आई।

कब, कैसे और किन लोगों द्वारा इस 'नई लहर' का सूत्रपात हुआ, कोई भी अब तक इन प्रश्नों का उत्तर निश्चित रूप से दे नहीं पाया है। हम इतना ही जानते हैं कि निस्सन्देह इस प्रवृत्ति का उदभव प्रगतिवादी भिक्षुओं द्वारा चलाए गए महासांघिक निकाय की विचार-प्रणाली में से हुआ; और ईसा पूर्व पहली या दूसरी शताब्दी से लेका ईसवी सन की पहली शताब्दी तक तथाकथित महायान सूत्रों में से महत्त्व के सूत्र पहले ही विद्यमान थे, और जब उनके आधार पर नागार्जुन का उच्च दार्शनिक विचार विकसित हुआ तब बौद्ध धर्म के इतिहास के मंच पर महायान बौद्ध धर्म को अग्रिम स्थान प्राप्त होना स्वाभाविक ही था।

बौद्ध धर्म के दीर्घ इतिहास में महायान बौद्ध धर्म का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। विशेष रूप से चीन और जापान के लगभग सारे इतिहास में इन देशों के बौद्ध धर्म का विकास महायान बौद्ध धर्म से ही प्रभावित है। किन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि उसमें पहले ही समस्त जनता के उद्धार का नया आदर्श सामने रखा गया था और बोधिसत्त्वों के रूप में इस आदर्श का पालन करने वाले जीवित संतों की कल्पना भी की गई थी। साथ ही साथ उन कल्पनाओं के समर्थन में महायान दार्शनिकों द्वारा आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रस्तुत किए गए बौद्धिक निर्णय भी वास्तव में भव्य थे। इस प्रकार जहाँ वह एक ओर गौतम बुद्ध के उपदेशों से जुड़ा हुआ था, दूसरी ओर उसमें प्रज्ञा और करुणा के कई नए-नए पहलू भी जोड़े गए। इस नई संवृद्धि के साथ बौद्ध धर्म में एक नया उत्साह और नई ऊर्जा पैदा हुई और वह एक महानदी के विशाल प्रवाह के समान पूर्व के देशों को समृद्ध करता रहा।

3. मध्य एशिया

चीन ने सर्वप्रथम मध्य एशिया के देशों से ही बौद्ध धर्म का परिचय प्राप्त किया। इसलिए, भारत से चीन तक बौद्ध धर्म के प्रचार के बारे में कहना हो, तो रेशम मार्ग (सिल्क रोड) के बारे में कहना आवश्यक होगा। यह मार्ग पूर्व तथा पश्चिम को जोड़ने के लिए मध्य एशिया के अनगिनत प्रदेशों में से गुजरता था और हान वंश (शासनकाल ई. पू 140-87) के वू राजा के काल में व्यापार के लिए खुल गया था। उस समय हान का साम्राज्य सुदूर पश्चिम तक फैला हुआ था; और उसके साथ लगे हुए फरगाना सग्दियाना, तुखार और पार्थिया जैसे देशों में भी विश्वविजेता सिकंदर द्वारा प्रेरित व्यापार-वृत्ति अभी भो उत्साह से क्रियाशील थी। और इन देशों से गुजरने वाले उस प्राचीन व्यापार-मार्ग पर सबसे अधिक आवाजाही चीन के रेशम व्यापार की थी, इसलिए इसका नाम रेशम मार्ग हो गया। ईसवी सन् के कुछ पहले या आरंभ में भारत और चीन ने अपने पारस्परिक सांस्कृतिक संपर्क इस व्यापार-मार्ग द्वारा ही आरंभ किए थे। इसलिए इस रेशम मार्ग को 'बौद्ध धर्म का मार्ग' भी कहा जा सकता है।

4. चीन

चीनी बौद्ध धर्म के इतिहास का आरंभ, चीनी लोगों द्वारा बौद्ध सूत्रों को स्वीकार करने तथा उनका अनुवाद करने से आरंभ होता है। इसका सबसे पुराना ग्रंथ, 'सु-शि-एर-चांग-चिंग' (बुद्ध वचनों का बयालीस खंडों वाला सूत्र) कहा जाता है, जिसका अनुवाद काश्यपमातंग तथा अन्यों द्वारा परवर्त्ती पूर्वी होने के राजा मिंग के यिंग-पिंग' काल (ई. स. 58-76) में किया गया था, किन्तु आज उसे एक संदेहात्मक दंतक था माना जाता है। प्रामाणिक अनुशीलन के अनुसार उसका श्रेय आनु-शि-काओ की है, जो लो-यांग में लगभग 148 से 171 ईसवी तक अनुवादकार्य में रत थे। इस समय से लेकर उत्तरी सुंगवंश (960-1129 ई. स.) के काल तक यह अनुवाद का कार्य लगभग एक हजार वर्ष तक अविरत चलता रहा।

प्रारंभिक काल में सूत्रों को लाने और उनका अनुवाद करने का मूल कार्य करने वालों में अधिकतर मध्य एशिया के देशों से आए भिक्षु ही थे। उदाहणार्थ, ऊपर उल्लिखित आन्-शि-काओ, पार्थिया से आए थे; कांग-सेंग-काई (धर्मवर्मन) समरकंद से आए थे और उन्होंने तीसरी शताब्दी में लो-यांग आकर 'सुखावती-ब्यूह' का अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त चू-फा-हू अथवा धर्मरक्ष, जो 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' के पुराने अनुवादक के रूप में प्रसिद्ध है, तुखार से आए थे और तीसरी शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर चौथी शताब्दी के आरंभ तक लो-यांग में रहे। और पाँचवीं शताब्दी के आरंभ में कुचा से कुमारजीव के आगमन के साथ चीन का अनुवादकार्य अपने पराकाष्ठा पर पहुँचा।

उसी काल से संस्कृत पढ़ने के लिए भिक्षु चीन से भारत की यात्रा करने लगे। ऐसे भिक्षुओं के अग्रणी थे फा-हियान (339-420 ई.)। उन्होंने सन् 399 में भारत के लिए चांग-आन छोड़ा और पंद्रह वर्ष बाद घर लौटे। भारत की यात्रा करने वाले भिक्षुओं में सबसे विख्यात थे ह्वेनत्सांग (युआन-च्वांग) (602-664 ई.) जो कि सन् 627 में भारत के लिए चले और सन् 645 में, उन्नीस वर्ष की दीर्घावधि के बाद, घर लौटे। उनके अतिरिक्त, इ-त्सिंग (635-713 ई.) सन् 671 में समुद्री मार्ग से भारत गए और उसी मार्ग से पचीस वर्ष बाद घर लौटे।

ये भिक्षु स्वयंप्रेरणा से संस्कृत पढ़ने के लिए भारत गए, वहाँ से असंख्य सूत्रों का चुनाव कर स्वदेश लाए और फिर उनके अनुवादकार्य में भी उन्होंने मुख्य रूप से हाथ बँटाया। विशेषत: ह्वेनत्सांग की भाषा सीखने की क्षमता अद्वितीय थी और उनके कर्मठ कार्य के कारण, चीन में सूत्रों के अनुवाद का कार्य दूसरी बार पराकाण्ठा पर पहुँचा। यही कारण है कि विद्वत् समुदाय, कुमारजीव जिनका प्रतिनिधित्व करते हैं ऐसे पुराने समय के अनुवादों को 'पुराने अनुवाद' और ह्वेनत्सांग तथा परवर्त्ती अनुवादकों की रचनाओं को 'नए अनुवाद' कहता है।

इस प्रकार अनुवादित असंख्य बौद्ध सूत्र ग्रंथों को आधार बनाकर इन आचार्यों के वैचारिक और धार्मिक क्रियाकलापों में धीरे-धीरे चीनीकरण की प्रवृत्ति दृढ़ होती गई। अनुवादों में जातीय स्वभाव, आवश्यकताएँ और आत्मविश्वास स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगे। इस प्रारंभिक काल में उनके मन का जो झुकाव प्रज्ञापारमितासूत्रों में चर्चित 'शून्यता' की आध्यात्मिकता की ओर रहा, वह भी उसी प्रवृत्ति का आविर्भाव था। धीरे-धीरे उन्होंने तथाकथित 'हीनयान' का त्याग कर अपना ध्यान मुख्यत: 'महायान' पर हो केन्द्रित किया; यह भी उसी प्रवृत्ति का आविष्कार था। अन्ततोगत्वा यह प्रवृत्ति तेन्दाई संप्रदाय में सुस्पष्ट हुई और कहा जा सकता है कि ज़ेन सम्प्रदाय के आविर्भाव में उसकी पराकाष्ठा हुई।

चीन में तेन्दाई संप्रदाय को परिपूर्णता छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में उसके तीसरे धर्मगुरु तेन्दाई दाइशी, चि-ई (538-597 ई.) द्वारा प्राप्त हुई। उनकी मानसिकता चीन द्वारा पैदा किए गए बौद्ध दार्शनिकों की प्रातिनिधिक मानसिकता थी; और बुद्ध के उपदेशों से संबंधित उनके 'पंचकाल-अष्टसिद्धान्त' के सटीक वर्गीकरण का उसके पश्चात् दीर्घकाल तक चीन तथा जापान के बौद्ध धर्म पर व्यापक प्रभाव रहा।

अध्ययन-अनुशीलन से पता चलता है कि जो भी सूत्र चीन में लाए गए वे रचनाकाल के क्रम का ख्याल किए बिना ही लाए गए थे और जैसे-जैसे लाए जाते रहे उनका अनुवाद भी होता रहा। इन सब सूत्रों के, जिनकी संख्या बहुत ज्यादा थी, रचनाक्रम और मूल्य को कैसे निश्चित किया जाए, यह समस्या खड़ी हो गई। उसमें भी बौद्ध धर्म की महत्ता और उसकी अपनी समझ को सुनिश्चित करने के लिए इन सूत्रों का वर्गीकरण और मूल्यांकन परमावश्यक था। इस कार्य में चीनी चिन्तन-पद्धति का योगदान इस रूप में उल्लेखनीय है कि इस प्रयास में चीनी दर्शन की प्रवृत्ति स्पष्टत: परिलक्षित होती है। उसमें भी चि-ई द्वारा किया गया वर्गीकरण सबसे व्यवस्थित और विश्वसनीय है। किन्तु बौद्ध धर्म-संबंधी आधुनिक अनुसंधान के आविर्भव के साथ इस प्रबल प्रभाव का भी अन्त हो गया।

चीनी बौद्ध धर्म के इतिहास में 'सबसे अन्त में आने वाला' संप्रदाय था जेन। कहा जाता है कि उसकी स्थापना एक विदेशी श्रमण बौधिधर्म (-528 ई.) द्वारा की गई थी। किन्तु उसके द्वारा बोया गया यह बीज, चीनी बौद्ध धर्म के सार के रूप में उसके छठे धर्मगुरु हुई-नेंग (638-713 ई.) के काल के बाद ही प्रस्फुटित हुआ। आठवीं शताब्दी के बाद चीन के इस संप्रदाय ने एक के बाद एक कई मेधावी भिक्षुओं को बाहर भेजा, जिससे कई शताब्दियों तक जेन की समृद्धि अक्षुण्ण रही।

इससे पता चलता है कि बौद्ध धर्म में एक नई विचार-पद्धति का आविर्भाव हुआ, जिसकी गहरी जड़ें चीनी लोगों के स्वभाव में थीं। स्पष्ट है कि यह बौद्ध धर्म चीनी विचार-पद्धति से रँगा हुआ बौद्ध धर्म था। फिर भी गौतम बुद्ध के उपदेश का प्रवाह, इस नई धारा के संगम से, और भी विशाल होकर पूर्व के देशों को समृद्ध करता रहा।

5. जापान

जापान में बौद्ध धर्म के इतिहास का आरंभ छठी शताब्दी में हुआ। ई. स. 538 में पोची (अथवा कुदारा, कोरिया) के राजा ने सम्राट् किन्मेइ के दरबार में एक बुद्ध की मूर्ति और सूत्रों का पट्ट भेंट करने के लिए अपना राजदूत भेजा था। इस प्रकार इस देश का पहली बार बौद्ध धर्म का परिचय मिला। इसलिए जापान में बौद्ध धर्म का इतिहासअब 1400 वर्ष से भी अधिक पुराना है।

इस दीर्घ इतिहासकाल में, हम जापानी बौद्ध धर्म के तीन केन्द्रबिन्दुओं को ध्यान में रखकर सोच सकते हैं। पहला केन्द्रबिन्दु लगभग सातबीं और आठवीं शर्ताब्दियों के बौद्ध धर्म पर रखा जा सकता है। वास्तुकला को लेकर कहा जाए तो इस काल में होर्‌यूजी मंदिर (607 ई.) और तोदाइजी मंदिर (752 ई.) का निर्माण हुआ। इस

कालखण्ड के बारे में सोचते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस काल में समस्त एशिया में सांस्कृतिक ज्वार पूरे उभार पर था। जिस समय पश्चिमी सभ्यता अंधकार के गहन गर्त में गर्क थी, पूर्वी सभ्यता विस्मयकारी ओज के साथ अनेकानेक भव्य कार्य करती जा रही थी। चीन में, मध्य एशिया में, भारत में तथा आग्नेय एशिया के देशों में भी बौद्धिक, धार्मिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में जोरदार गतिवधियां ही रही थीं, बौद्ध धर्म, इन गतिविधियों को परस्पर जोड़ता हुआ, व्यापक मानवतावाद के ज्वार से पूर्वी जगत को प्रक्षालित कर रहा था। जापान का नव सांस्कृतिक आन्दोलन, जो शानदार होरयूजी तथा भव्य तोदाइजी मंदिरों के निर्माण और उन मंदिर संस्थानों से अनुप्राणित तथा उन पर आधारित नानाविध धार्मिक एवं कलात्मक गतिविधियों के रूप में अभिव्यक्त हो रहा था, उस युग में एशिया के विशाल क्षेत्र को व्याप्त करने वाले सांस्कृतिक उन्मेष का सुदूर पूर्व में हो रहा प्रस्फुटन ही था।

दीर्घ काल तक सभ्यता से वंचित इस देश के लोग अब एक महान सांस्कृतिक धारा से अभिसिचित होने लगे और सभ्यता का पुष्प मानों यकायक खिल उठा। वह युग जापान के लिए सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ। और उस अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति का मुख्य प्रेरक बौद्ध धर्म ही था। इसीलिए उस युग के मंदिर संस्कृति के केन्द्र, मन्दिरों के भिक्षु नए ज्ञान के नेता और सूत्र उदात्त विचारों के वाहक थे। परिणामस्वरूप केवल एक धर्म का ही नहीं, एक व्यापक और महान संस्कृति का विकास भी हुआ। यही थी इस देश में प्रभम प्रतिरोपित बौद्ध धर्म का वास्तविक स्वरूप।

नौवीं शताब्दी में दो महान बौद्ध आचार्य, साइचो (देन्ग्यो दाइशी, 767-822) और कूकाई (कोबो दाइशी, 774-835) प्रकट हुए और उन्होंने दो बौद्ध संप्रदायों की स्थापना की, जिनको अकसर एक साथ हेइआन बौद्ध धर्म कहा जाता है। इस तरह पहली बार विशुद्ध जपानी बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। जिस बौद्ध धर्म के केवल सामान्त वर्ग के मनबहलाव का साधन बनने की आशंका पैदा हो गई थी, उसके साधना-पक्ष को ग्रहण कर ये आचार्य नगरों में केन्द्रित बौद्ध धर्म को पहाड़ों पर ले गए और वहाँ उन्होंने साधना के लए केन्द्रित मठों की स्थापना की। दोनों आचार्यों द्वारा क्रमशः हिएइ पर्वत और कोया पर्वत पर स्थापित तेन्दाह और शिंगोन संप्रदाय

तत्पश्चात् कामाकुरा काल तक के 300 वर्षों तक मुख्यत: सम्राट् के दरबार और कुलीन वर्ग में काफी प्रचलित रहे।

दूसरा केन्द्रबिन्दु बारहवीं-तेहरवीं शताब्दियों के बौद्ध धर्म पर रखा जा सकता है। उस काल में होनेन (1133-1212 ई.) शिनूरान (1173-1262 ई.) दोगेन (1200-1253 ई.) और निचिरेन (1222-1282 ई.) जैसे महान संत पैदा हुए। इन महान संतों के नामों का उल्लेख किए बिना जापानी बौद्ध धर्म के बारे में बात नहीं हो सकती। यहाँ प्रश्न उठता है कि इन्हीं शताब्दियों ने क्यों एक साथ ऐसे महान संतों को पैदा किया? कारण यह है कि सभी के सामने उस समय एक ही समस्या थी। क्या थी वह समस्या, बौद्ध धर्म की विशिष्ट जापानी ढंग से आत्मसात् करना ही वह समस्या थी।

यह प्रश्न भी उठ सकता है, ''क्यों? क्या बौद्ध धर्म इससे बहुत पहले ही इस देश में जड़ नहीं पकड़ चुका था?'' जड़ अवश्य पकड़ चुका था और इस ऐतिहासिक तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। किन्तु बौद्ध धर्म को पूर्णत: पचाने, उसे नया रूप देकर पूर्णरूपेण आत्मसात् करने, अर्थात इस प्रकार के सांस्कृतिक ग्रहण क कार्य के लिए इस देश के लोगों को कई शताब्दियों के प्रयास की आवश्यकता थी। बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के जो प्रयास सातवीं और आठवीं शताब्दियों में आरंभ हुए उनका पूर्ण विकास बारहवी-तेरहवीं शताब्दियों के इन बौद्ध मनीषियों द्वारा किया गया और जापान की धरती में आरोपित बौद्ध धर्म का पौधा एक बारगी पल्लवित-पुष्पित हो उठा।

उसके पश्चात्, उन महान बौद्ध संतों द्वारा डाली गई नींव के आधार पर, जापानी बौद्ध धर्म, आज तक अपनी संपन्नता को टिकाए हुए है। उन महान विभूतियों के आविर्भाव के पश्चात उन शताब्दियों की उज्ज्वलता फिर कभी जापानी बौद्ध धर्म के इतिहास के प्रकट नहीं होने पाई। किन्तु उनके बाद के जापानी बौद्ध धर्म के इतिहास में भी, एक और ध्यान आकर्षित करने वाली बात है, और वह यह कि इस आधुनिक काल

में मूल बौद्ध धर्म के संबंध में पुष्कल अनुसंधान-अनुशीलन हो रहा है, जिससे इस धर्म के नये आयाम और नई व्याख्याएँ सामने आ रही हैं।

ग्रहण किए जाने के प्रारंभिक काल से ही, जापान का लगभग समूचा बौद्ध धर्म, चीनी बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण, महायान ही रहा है। विशेषत: बाहरवीं और तेरहवीं शताब्दीयों में महान बौद्ध संतों के आविर्भाव के पश्चात्, संप्रदायों के संस्थापकों को केन्द्र में रखते हुए महायान ही मुख्य धारा बना रहा है और आज भी वही स्थिति है। जापानी बौद्ध धर्म के इतिहास में मूल बौद्ध धर्म का अनुसंधान अनुशील लगभग मेइजी काल के उत्तरार्ध में प्रारंभ हुआ। परिणामस्वरूप, संप्रदाय-संस्थापकों की भक्ति के भूले हुए लोगों के सम्मुख मूल धर्म-संस्थापक गौतम बुद्ध का अस्तित्व पूरी ओजीस्वता से पुन: प्रकट हुआ और महायान के उपदेशों की केवल तोता-रटन्त करने वालों पर यह भी स्पष्ट हो गया कि बौद्ध धर्म एक व्यवस्थित सिद्धान्त और परिपुष्ट दर्शन भी है। ये नई अवस्थाएँ अभी तक विद्वत्ता के क्षेत्र तक ही सीमित रही है; जन साधारण में नया धार्मिक उत्साह पैदा करने जितनी सामर्थ्य उनमें नहीं हैं। किन्तु लगता है कि इस देश के लोगों के बौद्ध धर्म संबंधी ज्ञान में बहुत कुछ परिवर्तन हो रहा है। इस स्थिति पर प्रकाशपुंज फेंकते हुए मैं इसे तीसरा और अंतिम केन्द्रबिन्दु मानता हूँ।

बौद्ध सूत्रों के प्रसारण का इतिहास

जिसे हम बौद्ध धर्म कहते हैं वह शाक्यमुनि द्वारा उनके अपने जीवनकाल में पैतालीस वर्ष तक दिए गए उपदेशों पर आधारित धर्म है अत: शाक्यमुनि के वचन बौद्ध धर्म के मूलाधार है। इस तथ्य के बावजूद कि इस धर्म में 84,000 धर्मपर्याय हैं और संप्रदाय भी बड़ी संख्या में हैं, वे सभी शाक्यमुनि द्वारा उपदेशित सूत्रों से संबंधित हैं। जिन ग्रंथों में बुद्ध के इन उपदेशों को संग्रहित किया गया है उनको 'इस्साइक्यो' अथवा 'दाईजोक्यो' अर्थात् पवित्र सूत्रों का संपूर्ण संग्रह कहा जाता है।

शाक्यमुनि ने मानवमात्र की समानता पर विशेष जोर दिया और सभी अच्छी तरह समझ सकें ऐसी रोजमर्रा की सरल भाषा में अपना उपदेश किया था और 80 वर्ष की आयु में भी परिनिर्वाण की अंतिम घड़ी तक, एक दिन भी विश्राम किए बिना वे असंख्य लोगों के हित और सुख के लिए उपदेश करते रहे।

उनके परिनिर्वाण के बाद, शिष्यों के श्रवण किया हुआ शाक्यमुनि का उपदेश लोगों तक पहुँचाया। जो कहा गया उसे सुनने में और पुन: कहने में गलती हो सकती थी और अभिधान की गललियाँ भी संभव थीं। फिर भी शाक्यमुनि के वचनों को सही-सही और मूलरूप में प्रसारित करना और सभी लोगों को समानता से वह उपदेश सुनाने का अवसर प्राप्त हो ऐसे उपाय करना आवश्यक था। ऐसी स्थिति में शाक्यमुनि के उपदेशों को भूलों से रहित शुद्ध रूप में अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए, स्थविरों ने इकट्ठा होकर उपदेशों को व्यवस्थित रूप दिया। उसे संगीति कहते हैं। संगीति में बहुत से स्थविर भिक्षु एकत्रित होकर हरएक अपने श्रवण और कंठस्थ किए हुए उपदेश का संगायन करता था, जिसे सुनकर उसमें कोई भूल है या नहीं इस पर कई मास तक चर्चा होती थी। यह दर्शाता है कि कितने भक्तिभाव से और सावधानी से उन्होंने शाक्यमुनि के वचनों को प्रसारित करने का प्रयास किया।

इस प्रकार व्यवस्थित रूप दिए गए उपदेशों को बाद में लिपिबद्ध कराया गया। लिपिबद्ध किए गए शाक्यमुनि के उपदेशों पर कालान्तर में परवर्त्ती विद्वान भिक्षुओं

द्वारा जो टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ लिखकर जोड़ी गईं, उन्हें 'अभिधर्म' (जापानी में 'रोनू') कहते हैं। बुद्ध के मूल उपदेश, बाद में उनमें जोड़ी गई व्याख्याएँ और विनय इन तीनों को मिलाकर 'त्रिपिटक' (जापानी में 'सोनूजो') कहते हैं।

त्रिपिटक में सूत्रपिटक (क्योज़ो), विनयटिक (रित्सुजो) और अभिधर्मपिटक (रोनज़ो) का समावेश होता है। पिटक का अर्थ है पिटारा या वर्तन। सूत्र (क्यो) का अर्थ है बुद्ध का मूल उपदेश, विनय (रित्सु) कहते हैं संघ के लिए आवश्यक शीलों और नियमों के संग्रह को और अभिधर्म' (रोन्) है श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा लिखी गई व्याख्याओं का संग्रह।

लगभग सभी सम्प्रदायों ने अपने-अपने सूत्र संग्रह संचित किए (संस्कृत : त्रिपिटक, पालि : तिपितक) लेकिन पूर्ण संग्रह केवल पालि की घेरवाद परम्परा का है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के बौद्ध देशों में इस पालि सूत्र संग्रह ने महत्वपूर्ण लिखित स्रोत का काम दिया है। परंपरा के अनुसार, चीन का बौद्ध धर्म से पहली बार परिचय परवर्त्ती पूर्वी हान वंश (25-220 ई.) के राजा मिंग के शासनकाल ई. स. 67 में हुआ। किन्तु, वास्तव में, उसके चौरासी वर्ष बाद, उसी वंश के राजा हुआन के काल में, चीन में पहली बार (सन् 151) बौद्ध सूत्र लाए गए और उनका अनुवाद किया गया। चूँकि महायान तब तक भारत में स्थापित हो चुका था, घेरवाद और महायान के सूत्र चीन में बिना किसी भेद-भाव के पहुँचाए गए। उसके बाद 1700 वर्षों से भी अधिक काल तक चीनी भाषा में सूत्रों के अनुवाद का कार्य सतत चलता रहा। इस प्रकार अनुवादित सूत्रग्रंथों की संख्या 1440 विभागों में 5586 ग्रंथों तक बढ़ गई। अनुवादित सूत्रों को सुरक्षित रखने के प्रयास वेई वंश के काल से ही आरंभ हो चुके थे, किन्तु उत्तरी सुंग वंश के काल में उनके मुद्रण का कार्य आरंभ हुआ। लगभग इसी काल से चीन के श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा लिखित व्याख्याएँ बौद्ध सूत्रों के साथ जोड़ी जाने लगीं और अब इन ग्रंथों को त्रिपिटक कहना अनुचित समझा जाने लगा। सुएइ के काल में इनकों 'इस्साइक्यो' अर्थात् सभी पवित्र ग्रंथों का संपूर्ण संग्रह नाम दिया गया और तांग के काल में इन्हें 'दाइज़ोक्यो' अर्थात् सभी बौद्ध धर्मग्रथों का महान संग्रह कहा जाने लगा।

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश लगभग सातवीं शताब्दी में हुआ और उसके बाद नौवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक लगभग 150 वर्ष बौद्ध सूत्रों के अनुवाद के प्रयास चलते रहे और उस अवधि में लगभग सभी सूत्रों का अनुवाद हो गया।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बौद्ध सूत्रों का अनुवाद न केवल कोरियाई, जापानी, सिंघली, काम्बोजी, तुर्की और लगभग सभी प्राच्य भाषाओं में, अपितु लातीन, फ्रांसिसी, अंग्रेजी, जर्मन और इतावली भाषाओं में भी हो चुका है, यह कहने में अतिशयोक्ति न हेगी कि बुद्ध के उपदेश का कृपाप्रसाद अब विश्व के कोने-कोने में पहुँच गया है।

किन्तु वस्तुस्थिति पर विचार करें तो दिखाई देता है कि दो हज़ार वर्षों से भी अधिक के काल में कई प्रगतियाँ और परिवर्तन हुए और दूसरे अनुवादित ग्रंथों की संख्या भी दस हज़ार से अधिक होने के कारण, पूरा 'दाइज़ोक्यो' अपने पास हो तो भी उसकी सहायता से शाक्यमुनि के वचनों के सत्यार्थ को ग्रहण करना बहुत कठिन है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि 'दाइज़ोक्यो' में से महत्त्व के हिस्सों को चुन लिया जाए और उन्हें अपनी श्रद्धा का आधार बनाया जाए।

बौद्ध धर्म में शक्यमुनि के वचन परम आधिकारिक हैं। अत: यह बहुत आवश्यक है कि शाक्यमुनि का उपदेश हमारे वास्तविक जीवन ये अत्यंत गहरा और आत्मीयता का संबंध रखने वाला हो। यदि ऐसा न हुआ तो दस हज़ार धर्मग्रंथ भो अंत में हमारे हृदयों को आन्दोलित किए बिना ही रह जाएँगे। इसलिए जिस उपदेश को हम अपना सके, वह सरल और संक्षिप्त हो, पक्षपात रहित हो, सब का प्रतिनिधित्व करने वाला हो, फिर भी यथार्थ हो और उसकी शब्दावली हमारे दैनंदिन जीवन की परिचित शब्दावली हो।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना ऊपर लिखी बातों को ध्यान में रखकर बहुत सावधानी से की गई है। यह धर्मग्रंथ गत दो हज़ार वर्ष की 'दाइज़ो' की धारा को अंगीकार करता हुआ शाक्यमुनि के उपदेशों के समुद्रमंथन से पैदा हुआ है। इसे संपूर्ण ग्रंथ तो कदापि नहीं कहा जा सकता। बुद्ध के वचनों का अर्थ अपार और गहन है और उनके पुण्य इतने असीम हैं कि उनका आकलन आसानी सै नहीं हो सकता।

यही आशा की जाती है कि जैसे-जैसे भविष्य में इस ग्रंथ के संशोधित संस्करण निकलते जाएँगे, जैसा कि सोचा गया है, वैसे-वैसे इस ग्रंथ को अधिक यथार्थ और महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाता रहेगा।

'भगवान बुद्ध का उपदेश' का इतिहास

प्रस्तुत बौद्ध धर्मग्रंथ, 7 जुलाई 1925 में भिक्षु मुआन किज़ू के मार्गदर्शन में बौद्ध धर्मग्रंथ के नए अनुवाद की प्रचारक संस्था द्वारा प्रकाशित 'बौद्ध धर्मग्रंथ का नया अनुवाद' नामक मूल जापानी संस्करण के आधार पर संपादित, संशोधित और परिवर्धित संस्करण है। पहला जापानी संस्करण डॉ. शूगाकु याम्बे एवं डॉ. चिज़ेन आकानुमा इन दो विद्वानों द्वारा, जापान के बहुत से विद्वानों के सहकार्य से, तैयार किया गया था, जिसे प्रकाशित होने में लगभग पाँच वर्ष लगे थ

यहाँ 'बौद्ध धर्म-प्रतिष्ठान' भिक्षु मुआन किज़ू आदि 'बौद्ध धर्मग्रंथ का नया अनुवाद' संपादित करने वाले सभी विद्वानों के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करता है।

शोवा काल (1926-) में प्रचारक संस्था द्वारा 'बौद्ध धर्मग्रंथ का लोकप्रिय संस्करण' भी प्रकाशित किया गया और सारे जापान में वितरित किया गया।

जुलाई 1934 में जब अखिल-प्रशान्तक्षेत्रीय युवक-परिषद का आयोजन जापान में हुआ, उस समय उसके एक स्मारक कार्य के रूप में ऊपर उल्लिखित 'बौद्ध ध र्मग्रंथ के लोकप्रिय संस्करण' का अंग्रेज़ी संस्करण 'The Teaching of Buddha' श्री डी. गोडार्ड का सहयोग प्राप्तकर, अखिल जापान बौद्ध युवक संघ द्वारा प्रकाशित किया गया। सन् 1962 में, अमेरिका में बौद्ध प्रचार के 70वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में मित्सुयोतो कंपनी के संस्थापक श्री येहान नुमाता ने 'भगवान बुद्ध का उपदेश' के अंग्रेज़ी संस्करण को स्वयं प्रकाशित किया।

सन् 1965 में, जब श्री नुमाता ने तोक्यों में बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान की स्थापना की, तब प्रतिष्ठान के एक प्रमुख कार्य के रूप में इस धर्मग्रंथ का सारे विश्व में प्रचार करने की योजना बनाई गई।

इस योजना के अनुसार, सन 1966 में 'भगवान बुद्ध का उपदेश' का संशोधित और परिवर्धित संस्करण तैयार करने के लिए एक समिति बनाई गई। उसके सदस्य थे नश्रत सरंयरह केलर, प्रो. शूयू कानाओका,प्रो. ज़ेन्नो इशिगामी, प्रो. शिंको सायेकी, प्रो. कोदो मात्सुनामी तथा प्रो. ताकेमी ताकासे। प्रो. फुमिओ मासुतानी, श्री एन्. ए. वाडेल तथा श्री तोशिसुके शिमिजु आदि का भी सहयोग प्राप्त कर 'भगवान बुद्ध का उपदेश' के संपूर्ण संशोधित और परिवर्द्धित अंग्रेज़ी-जापानी संस्करण का आविर्भाव हुआ।

सन् 1972 में, प्रो. शूयू कानाओका, प्रो. ज़ेन्नो इशिगामी, प्रो. शोयू हानायामा, प्रो.

कान्सेइ तामुरा तथा प्रो. ताकेमी ताकासे ने कुछ मुद्रण की अशुद्धियों को सुधारकर उसका पुनस्संकरण किया।

फिर, सन् 1974 में, अंग्रज़ी संस्करण में पाई कुछ असंगत और अशुद्ध अभिव्यक्तियों की ओर जब श्री रिचर्ड के स्टाइनर द्वारा प्रतिष्ठान का ध्यान खींचा गया तब उनके मार्गदर्शन में प्रो. शोजुन् बान्दो, प्रो. कोदो मात्सुनामी, प्रो. शिंको सायेकी, प्रो. कानसई तामुरो, प्रो. दोयू तोकुनागा ओर प्रो. शोयू हानायामा (प्रधान संपादक) ने मिलकर मूल-पाठ में संशोधन किया। सन् 1978 और 1980 में विषय-वस्तु के कुछ हिस्सों के संबंध में श्री शिन्रोकु इनोउये के सुझावों पर विचार करने के लिए, फिर से ऊपर लिखित संपादकमंडल के सदस्यों के अतिरिक्त प्रो. शिगेओ कामाता तथा प्रो. यासुआकी नारा ने मिलकर ग्रंथ पर पुनर्विचार किया। उनके द्वारा किए गए संशोधनों के अनुसार 'भगवान बुद्ध का उपदेश' का अंग्रेज़ी-जापानी संस्करण वर्तमान रूप में प्रकाशित किया गया।

सन् 1980 में, यह तय किया गया कि इस ग्रंथ को जिन चार भाषाओं में (अंग्रेजी, फ्रेंच, पोर्तुगीज़ और स्पॅनिश) वह पहले उपलब्ध था उनके अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी अनुवादित कराने का समय आ गया हैं। इसलिए, प्रतिष्ठान न फिर एक बार श्री स्टाइनर से अंग्रज़ी अनुवाद का परिशोधन करने की प्रार्थना की, जिसके आधार पर जर्मन इतालवी, ग्रीक, चीनी, डच और नेपाली संस्करण तैयार किए जा सकें।

फिर सन् 1981 में, इस ग्रंथ को अधिक पठनीय बनाने के लिए, जापान और अमेरिका दोनों देशों के हाइस्कूलों के कई विद्यार्थियों को यह ग्रंथ पढ़ने के लिए कहा गया। उनके द्वारा जो हिस्से दुर्बोध बताए गए उनपर संपादक-मडल ने विचार किया और उनके अनुसार ग्रंथ में आवश्यक सुधार किए गए। भविष्य में भी इस प्रकार इस ग्रंथ में सुधार करते रहने का विचार है।

सन् 1984 में इस ग्रंथ का जापानी से हिन्दी अनुवाद डॉ. नरेश मंत्री ने किया, जिसमें आवश्यक सुधार करने का काम श्री श्यामू संन्यासी (श्यामसुन्दर जोशी) ने किया।

1978 म प्रोफेसर शिगिओ कमाता और यासुआकी नारा समिति में जुड़े फिर 2000 में संग्रह को नए सिरे से बनाया गया जिसमें प्रोफेसर जैन्नो इंशगामी, यासुआकी नारा, कोदो मात्सुनामी, शोजुन बान्दो, कैन्नैथ तनाका, शोगो वातानाबे, योंशिया योनेज़ावा, और सैन्गाकु मायेदा (कार्यकारी मुख्य सम्पादक) का योगदान रहा।

दिसम्बर, 2004

हिन्दी अनुवाद के संबंध में

इस हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन में जो विलम्ब हुआ, उसके लिए मैं सर्वप्रथम पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। वास्तव में तोक्यो स्थित 'बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान' ने यह काम दो वर्ष पहले मुझे सौपा था। अत: पिछले वर्ष ही यह अनुवाद तैयार होकर प्रकाशित हो जाना चाहिए था। किन्तु कुछ व्यक्तिगत कारणों से मैं चह अनुवाद समय पर तैयार नहीं कर पाया, जिसका मुझे हार्दिक खेद है।

इस ग्रंथ का संकलन किस उद्देश्यय से, कैसे और किन विद्वानों द्वारा हुआ इस के संबंध में पूरी जानकारी इस पुस्तक के पृष्ठ 282 से 286 देखने से प्राप्त हो सकती है। इसलिए यहाँ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। मूल जापानी संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद कैसे हुआ और उसमें कैसे परिवर्तन होते गए उसकी जानकारी भी उसमें है। उसके बाद विश्व की कई प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद होकर प्रकाशित हो चुके हैं जहाँ तक मेरा ख्याल है, ये सब अनुवाद अंग्रेज़ी अनुवाद पर से ही हुए हैं।

जब मैंनें इस अनुवादकार्य को स्वीकार किया तब मैंने प्रतिष्ठान वालों से कहा कि मैं हिन्दी अनुवाद जहाँ तक हो सके सीधा जापानी से करना पसंद करूगा। क्योंकि अंग्रेजी में बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्द नहीं हैं, अंग्रेज़ी अनुवाद अंग्रेज़ी पाठकों की सुविधा की दृष्टि से अधिक स्पष्टीकरणात्मक हो गया है। किन्तु भारतीय भाषाओं में बौद्ध परिभाषा प्रचलित है और उसी के चीनी अनुवाद का प्रयोग जापानी में होता है। जैसे, बुद्ध के एक अभिधान 'अनुत्तर सम्यक्संबुद्ध' का अनुवाद मुज्योकाकुश्या' (जापानी उच्चारण) हुआ है। चीनी अक्षरों के अर्थ पर से उसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया गया है 'the Perfectly Enlightened One'। अब उस पर से हिन्दी में उसका अनुवाद 'परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त व्यक्ति' करना अशुद्ध तो नहीं, किन्तु पूर्णतया असंगत होगा। क्योंकि बुद्ध के अभिधानों में ऐसा कोई अभिधान नहीं है। बुद्ध का दूसरा सर्वपरिचित अभिध ान है 'भगवान' उसका अनुवाद 'सेसोन्' हुआ है। उसका अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ 'the World-honored One' अब उसका हिन्दी अनुवाद 'विश्ववंद्य' या 'जगद्वंद्य करना कहाँ तक ठीक होगा? ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसलिए मैंने मूल जापानी को पढ़कर मूल पाली और संस्कृत सूत्र ढूँढ़कर जहाँ तक हो सके अनुवाद में बहुप्रचलित

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। अनुवादकार्य में विलम्ब होने का यह भी एक कारण है। अब मुझे इसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई है उसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे। जहाँ मुझे अंग्रेज़ी अनुवाद अच्छा लगा, वहाँ मैने उसकी सहायता भी ली है।

बड़े बड़े होटलों के कमरों में इस ग्रंथ को ईसाई 'बाइबिल' के साथ रखा जाता है। अर्थात् एक तरह से यह ग्रंथ जापानी बौद्ध विद्वानों द्वारा संकलित बौद्ध 'बाइबिल' ही है। भारतीय पाठकों को भी इस ग्रंथ के द्वारा चीनी और जापानी बौद्धों द्वारा विकसित बौद्ध धर्म का एक नया रूप देखने को मिलेगा। ऐसे महत्त्वपर्ण ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद का कार्य मुझे सौंपा गया इसलिए मैं 'बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान' का बहुत आभारी हूँ। इस अनुवादकार्य के निमित्त मुझे बौद्ध धर्म का फिर से अध्ययन करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है।

मेरे अनुवाद को एक हिन्दी-भाषी पाठक और आलोचक की दृष्टि से पढ़कर उसे सुधारने का कठिन कार्य मेरे परम स्नेही श्री श्यामसुंदर जोशी ने, जो कि श्यामू संन्यासी के नाम से विख्यात हैं, बहुत परिश्रमपूर्वक किया है। अनुवादशैली में कुछ सुन्दरता आई हो तो उसका श्रेय उन्हीं को है। मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ।

फिर इस हिन्दी अनुवाद को जापान जैसे विदेश में हिन्दी में टाईप करना भी एक बड़ी समस्या थी। किन्तु मेरे विद्यार्थी श्री योइची युकिशिता ने अपने हिन्दी टाईपराइटर पर बहुत परिश्रमपूर्वक और सुन्दर ढंग से इसे टाईप कर दिया। मैं उनका भी बहुत आभारी हूँ

इस पुस्तक के फोटो कम्पोजिंग का कार्य पॉप्युलर प्रकाशन, बम्बई के संचालक, मेरे स्नेही, श्री सदानंद भटकल तथा अक्षरछाया, पुणे के श्री निनाद माटे ने बहुत सावधानी से और सुन्दर ढंग से किया है। उनका भी मैं बहुत आभारी हूँ।

अनुवाद में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो पाठक उनकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उसके अनुसार सुधार किया जा सके।

भारत में ही पैदा हुई इस महान विभूति का उदात्त उपदेश हम लगभग भूल गए है, भूलते जा रहे हैं। इस ग्रंथ द्वारा भारतीय मानस में वह फिर जाग्रत हो उठे तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

–नरेश मंत्री

तोक्यो, जापान

महाशिवरात्रि, 1984

इस किताब भगवान बुद्ध का उपदेश का शुद्धिकरण अगस्त 2012 में बिक्रम जैन, माया जोशी और मैथ्यु वर्गीस की देख-रेख में किया गया।

'भगवान बुद्ध का उपदेश' की विषयानुक्रमणिका

मानवी जीवन	पृष्ठ	पंक्ति
जीवन का अर्थ	5	13
इस संसार की वास्तविक स्थिति	96	17
जीने के आदर्श मार्ग	235	15
मिथ्या जीवन-दृष्टि	44	15
यथार्थ जीवन-सिद्धान्त	41	9
अतिरेकी जीवन	57	7
मोहग्रस्त आदमी के लिए (दृष्टान्त)	127	1
मनुष्य का जीवन (दृष्टान्त)	90	18
यदि मनुष्य वासना और आसक्ति भरा जीवन जीए (दृष्टान्त)	90	7
वृद्ध, रोगी और मृत क्या शिक्षा देते हैं (कथा)	93	13
मृत्यु अनिवार्य है (कथा)	94	19
इस संसार में पाँच असंभव बातें	48	6
इस संसार में चार सत्य	48	16
भ्रान्ति ओर निर्वाण, दोनों की उत्पत्ति चित्त में ही होती है	49	11
सामान्य मनुष्य के लिए दुष्प्राप्य किन्तु प्राप्त करने पर बहुमूल्य बीस बातें	133	6

श्रद्धा	पृष्ठ	पंक्ति
श्रद्धा अग्नि है।	179	5
श्रद्धा के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं	180	17
श्रद्धा एक चमत्कार ही है	182	4
श्रद्धावान् मन निष्ठावान होता है	181	7
यथार्थ को पाना उतना ही कठिन है जितना कि अंधों के लिए स्पर्श द्वारा हाथी के यथार्थ रूप का वर्णन करना (दृष्टान्त)	75	2
बुद्धता कहाँ होती है इसका ज्ञान सच्चे धर्मोपदेशक द्वारा हो सकता है (दृष्टान्त)	77	16
बुद्धता क्लेशों में लिपटी-ढँकी हुई होती है (दुष्टान्त)	73	12
संदेह श्रद्धा में बाधा पैदा करते हैं	182	8
बुद्ध इस संसार के पिता और सभी प्राणी उनके पुत्र हैं	35	16
बुद्ध की प्रज्ञा महासागर के समान विशाल और गहरी है	34	8
बुद्ध का हृदय परम कारुणिक है	15	1
बुद्ध की करुणा अनन्त है	16	6
बुद्ध का कोई भौतिक शरीर नहीं है	13	20
बुद्ध अपने जीवन द्वारा उपदेश करते हैं	23	13
बुद्ध लोगों की आँखे खोलने के लिए परिनिर्वाण का अभिनय करते हैं	23	13
बुद्ध उपायकौशल्य के द्वारा लोगों को दुःखों से बचाते हैं (दृष्टान्त)	19	6
,,	20	1

	पृष्ठ	पंक्ति
निर्वाण का विश्व	237	9
बुद्ध धर्म और संघ की उपासना करना	178	1
शील, ध्यान और प्रज्ञा, तीनों का अभ्यास करो	163	11
आर्य अष्टांगिक मार्ग	166	13
छह पारमिताएँ	168	15
चार सम्यक् प्रहाण	168	6
चार स्मृति-उपस्थान	167	13
निर्वाण-प्राप्ति के लिए आवश्यक पंच बल	168	11
चित्त की चार अप्रामाणिक अवस्थाएँ	171	14
चार आर्य सत्यों का ज्ञान रखने वाले	39	12
मनुष्य की मृत्यु और संसार की अनित्यता	13	1
अमिताभ बुद्ध के नाम का जप करने वाले सुखावती लोकधातु में पैदा होंगे	113	1
आत्मदीप बनो, आत्म-शरण बना	10	15
मानसिक साधना		
अपने लिए सब से महत्त्वपूर्ण क्या है इस बात का ख्याल रखना (दृष्टान्त)	150	8
हर एक डग सावधानी से उठाना चाहिए	133	1
हम क्या खोज़ रहे हैं इसे भूल न जाएँ (दृष्टान्त)	152	9
किसी बात में सफलता पानी हो तो कई कठिनाइयों को सहना होगा (कथा)	158	19
बार-बार गिरने पर भी हिम्मत मत छोड़ो (कथा)	173	7
प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मन को विचलित न होने दें (कथा)	124	1

	पृष्ठ	पंक्ति
सन्मार्ग का आचरण करने वाले मानो दीपक लेकर अंधेरे कमरे में प्रवेश करते हैं	40	11
मानवी जीवन में सर्वत्र उपदेश भरा पड़ा है (कथा)	161	18
सभी मनुष्य अपने विचारों के अनुसार आचरण करते हैं	121	16
उपदेश की कुंजी है अपने हृदय पर काबू पाना	11	13
सब से पहले अपने मन को नियंत्रित करो	212	1
यदि मन को नियंत्रित किया जाए	122	1
मन की विभिन्न अवस्थाएँ (दृष्टान्त)	118	6
मन आत्मसन्नद्ध नहीं है	46	13
मन के अधीन मत बनो	11	1
अपने मन पर विजय पाओ	154	12
हृदय के स्वामी बनो	11	18
सभी पाप चित्त, वाणी और शरीर से पैदा होते हैं	87	3
हृदय और शब्दों का संबंध	125	8
शरीर केवल एक उधार ली हुई वस्तु है (कथा)	143	5
शरीर अशुचि पदार्थों से भरा हुआ है	130	18
किसी वस्तु का लोभ न करो	11	1
काया, वाचा और मन को पवित्र रखो	123	10
प्रयत्न करते समय ठीक अनुपात का ख्याल रखो (कथा)	172	12

मानवी दुःख

मानवी दुःख मन की आसक्तियों के कारण पैदा होता है	42	20
दुःख के निवारण का उपाय	13	10

	पृष्ठ	पंक्ति
भ्रांति और अज्ञान निर्वाण के प्रवेशद्वार हैं	59	12
भ्रांति से मुक्ति पाने का मार्ग	116	1
क्लेशों की आग बुझाने पर शीतल निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है	141	18
वासना ही मोह का मूल है	85	14
वासना को फूलों की वाटिका में छिपी नागिन समझो	85	17
जलते हुए घर के प्रति आसक्त मत बनो (दृष्टान्त)	19	19
भोग-लालसा पापकर्मों का मूल है	118	6
यह संसार अग्नियों से जल रहा है	82	17
यश-कीर्ति के पीछे पड़कर लोग अपने आप को जलाते हैं	119	11
संपत्ति और विषय वासना के चक्कर में पड़े हुए लोगों का निवाश होता है	119	16
धर्मात्मा और पापात्मा के स्वभाव में मूलभूत अंतर होता है	134	3
मूर्ख मनुष्य का अपने दुराचरण के प्रति ध्यान नहीं जाता (दुष्टान्त)	141	1
मूर्ख मनुष्य केवल परिणामों को देखकर दूसरों के भाग्य की ईर्ष्या करता है (दृष्टान्त)	141	5
मूर्ख मनुष्य का आचरण कैसा होगा (दृष्टान्त)	147	1
दैनिक जीवन		
दान देकर दान की बात भूल जाओ	169	19
बिना धन के सात प्रकार के दान	170	5
संपत्ति प्राप्त करने का उपाय (कथा)	145	15

	पृष्ठ	पंक्ति
सुख पैदा करने का उपाय	132	14
उपकारों को कभी मत भूलो	139	1
मनुष्य स्वभाव के प्रकार	89	5
बदले की भावना के अधीन होने वाले का दुर्भाग्य हमेशा पीछा करता है	132	3
क्रोध को शात करने का उपाय (कथा)	232	6
दूसरों की निन्दा से विचलित मत होना (कथा)	122	12
तुम वस्त्र, अन्न और प्रश्रय के लिए नहीं जीते	205	10
वस्त्र और अन्न उपभोग के लिए नहीं होते	117	2
खाना खाते समय क्या सोचना चाहिए	208	5
वस्त्र पहनते समय क्या सोचना चाहिए	207	8
सोते समय क्या सोचना चाहिए	208	16
गर्मी और सर्दी में क्या सोचना चाहिए	208	9
दैनिक जीवन में क्या सोचना चाहिए	206	12
अर्थशास्त्र		
हर वस्तु का ठीक उपयोग करना चाहिए (कथा)	221	10
कोई भी संपत्ति सदा के लिए अपनी नहीं होती	220	20
अपने लिए संपत्ति का संचय नहीं करना चाहिए	223	5
संपत्ति कैसे प्राप्त करें (कथा)	145	15
पारिवारिक जीवन		
परिवार एक ऐसी जगह है जहाँ हृदयों का परस्पर बहुत निकट संबंध होता है	218	8
परिवार का नाश करने वाला आचरण	213	7
माता-पिता के ऋण से मुक्त होने का मार्ग	218	3
माता-पिता और पुत्र का परस्पर आदर्श व्यवहार	214	1

	पृष्ठ	पंक्ति
पति और पत्नी का परस्पर आदर्श व्यवहार	214	17
पति और पत्नी दोनों की श्रद्धा अभिन्न हो (कथा)	222	15
भिक्षुओं का मार्ग		
चीवर-धारण करने मात्र से सूत्र-पाठ करने मात्र से भिक्षु प्रव्रजित नहीं होता	197	6
भिक्षु मंदिर और उसकी संपत्ति के उत्तराधिकाीर नहीं होते	194	1
लोभी मनुष्य सच्चे भिक्षु नहीं बन सकते	194	5
भिक्षु का वास्तविक जीवन कैसे होना चाहिए	196	4
समाज		
सामाजिक जीवन का अर्थ	227	13
इस संसार में समाज की वास्तविक स्थिति	96	17
तीन प्रकार के संगठन	227	17
सही संगठन का स्वरूप	228	7
अंध: कारपूर्ण बंजर का प्रकाशित करने वाला प्रकाश	226	6
मानवी संबंधों में समांजस्य	228	17
संघ में समंजस्य पैदा करने में सहायक बातें	230	4
संघ का आदर्श	229	6
बौद्ध उपासकों का सामाजिक आदर्श	237	1
व्यवस्था के नियम को तोड़ने वाले एक साथ नष्ट हो जाते हैं (दुष्टान्त)	140	3
ईष्या करके लड़-झगड़ने वाले एक साथ नष्ट होते हैं (दुष्टान्त)	140	3
वृद्धों का सम्मान करो (कथा)	134	16
गुरु और शिष्य का एक दूसरे के प्रति		

	पृष्ठ	पंक्ति
व्यवहार कैसा हो	214	8
मित्रता के नियम	215	10
सच्चे मित्रों को कैसे चुनें	216	18
मालिक और दास-कर्मकरों के बीच कैसा व्यवहार होना चाहिए	215	16
अपराधियों के प्रति कैसा व्यवहार करें	228	14
धर्म के प्रचार की इच्छा रखने वालों के लिए ध्यान में रखने योग्य बातें	199	1

संस्कृत शब्दावली (वर्णक्रमानुसार)

अनात्म (जापानी 'मुगा')

यह बौद्ध धर्म का एक मूलभूत सिद्धान्त है। इस संसार के सभी अस्तित्व और गोचर वस्तुओं में, तत्त्वत:, कोई ठोस वास्तविकता नहीं है। सभी अस्तित्व को अनित्य बताने वाले बौद्ध धर्म के लिए यह स्वाभाविक हो जाता है कि इस प्रकार अनित्य अस्तित्व में कोई स्थायी तत्त्व न हो सकने को बात पर जोर दे। अनात्म को नैरात्म्य भी कहते हैं, जिसका अर्थ है आत्मा नामक चिरस्थायी तत्त्व का अभाव।

अनित्य (जापानी 'मुज्यो')

बौद्ध धर्म का एक और मौलिक सिद्धान्त। इस संसार के सभी अस्तित्व और गोचर वस्तुएँ सतत परिवर्तनशील हैं और एक क्षण भी यथावत नहीं रहतों। हर एक को भविष्य में किसी दिन मरना है या नष्ट हो जाना है और यह संभावना ही दु:ख का मूल कारण है। तथापि इस सिद्धान्त को निराशावादी या अराजकतावादी दृष्टि से नहीं लेना चाहिए, क्योंकि प्रगति और पुनरुत्पादन दोनों इस सतत परिवर्तन से ही आविर्भूत हैं

अविद्या (जापानी 'मुम्यो')

सम्यक् प्रज्ञा के अभाव की स्थिति को कहते हैं। यह अज्ञान का ही पर्याय हैं, जो भ्रान्ति का मूल कारण है। उसके मानसिक व्यापार को मूढ़ता कहते हैं। संप्रदायों के अनुसार इसके अलग-अलग विश्लेषण और व्याख्याएँ हैं, किन्तु सभी इसे क्लेशों का मूल प्रेरक मानते हैं। इसीलिए सभी अस्तित्व के हेतुप्रत्यय को, जिसे बाहर अंगों में समझाया गया है उस

प्रतीत्य समुत्पाद-वाद में इसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। इसे भव-तृष्णा की अंध इच्छाशक्ति भी कह सकते हैं।

कर्म (जापानी 'गो')

यद्वपि इस शब्द का मूल अर्थ केवल 'कार्य' या काम होता है, पर हेतु-प्रत्यय के सिद्धान्त के सिलसिले में इसे एक विशेष अर्थ प्राप्त हुआ है। वह है हमारे गत कर्मों के फलों के कारण प्राप्त एक प्रकार की प्रच्छन्न शक्ति। अर्थात् हमारे भले या बुरे हर कर्म के अनुसार भले या बुरे, सुखद या दु:खद फल होते हैं और उनमें हमारे भविष्य को प्रभावित करने की शक्ति होती है और इसे हमारा कर्म माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि यदि हम भले काम करते गए, तो भलाई का संचय होता जाएगा और उसकी प्रच्छन्न शक्ति का हमारे भविष्य पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। कर्म तीन प्रकार के होते हैं: कायिक, वाचिक और मानसिक।

क्लेश (जापानी 'बोन्नो')

निर्वाण की प्राप्ति में बाधक बनने वाले, मनुष्य के सभी मानसिक व्यापारों को बौद्ध परिभाषा में क्लेश कहा जाता है। मनुष्य के अस्तित्व से प्रत्यक्ष संबंधित अनेक वासनाएँ उसके शरीर और मन को कष्ट पहुँचाती हैं, अस्वस्थ और व्याकूल करती हैं। उनका उद्‌गम आत्मतृष्णा और आत्मआसक्ति में है: या ऐसा भी कह सकते हैं कि उनका मूल प्राण शक्ति में ही है। लोभ, क्रोध और मोह मूल क्लेश हैं, जिनमें से और अनेक क्लेश पैदा होते हैं। ये सब निर्वाण-प्राप्ति में बाधक होते हैं, इसलिए साधना की प्रक्रिया में इनका निवारण करना चाहिए। किन्तु इस

बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे प्राणशक्ति से प्रत्यक्ष संबंधित हैं, इसलिए निर्वाण की ओर छलांग लगाने की सीढ़ी के रूप में उनका स्वीकार करने वाली विचारप्रणाली भी है।

त्रिपिटक

ये बौद्ध सूत्रों के तीन विभाग दर्शाते हैं। वे हैं सूत्र, जिनमें भगवान बुद्ध का उपदेश ग्रथित है; विनय, जिसमें उनके शीलों और नियमों का समावेश होता है और अभिधर्म जो कि बौद्ध सूत्रों और सिद्धान्तों पर लिखी गई व्याख्याओं का संग्रह है। बाद में चीनी आर जापानी बौद्ध आचार्यों द्वारा लिखे गए ग्रंथों का भी उनमें समावेश किया गया। (धर्म देखिए)

थेरवाद

बौद्ध धर्म की दक्षिणी परंपरा का उल्लेख साधारणत: इस नाम से किया जाता है। थेर का अर्थ है स्थविर, वयोवृद्ध। यह स्थविरों का निकाय है, जो कि ऐतिहासिक रूप में ऐसे स्थविर भिक्षुओं का समूह था जिन्होंने दूसरे कुछ स्वतंत्र प्रगतिशील भिक्षुओं का विरोधकर शीलों का कट्टर आचरण पर जोर दिया। और पुरानी बातों को कड़ाई से सुरक्षित रखा। (प्रगतिशील भिक्षुओं की धारणाएँ बाद में महायान में विकसित हुईं, जिसे उत्तरी परंपरा कहते हैं।) कहा जाता हे कि बौद्ध संघ में इस प्रकार की परस्परविरोधी प्रवृत्तियाँ बहुत प्रारंभिक काल में, बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही शताब्दियों बाद, पैदा होने लगी थीं, जब कि महादेव नामक प्रगतिवादी भिक्षु ने बौद्ध विनयों के पाँच वर्गीकरणों के अन्तर्गत स्वतंत्र व्याख्या के एक वर्ग का भी आग्रह किया। इससे विभक्त होकर बन गए थेरवाद और महासांघिक, जो कि परवर्त्ती महायान का मूल स्रोत माना जाता है।

धर्म

सम्यक्संबोधि प्राप्त बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को धर्म कहते हैं। उपदेश के तीन विभाग हैं: सूत्र (बुद्ध द्वारा स्वयं दिए गए उपदेश) विनय (बुद्ध द्वारा भिक्षुओं के आचरण के लिए बनाए गए नियम) और अभिधर्म (परवर्त्ती काल में विद्वानों द्वारा सूत्रों और विनयों पर की गई व्याख्या और चर्चाएँ)। इन तीनों को त्रिपिटक कहते हैं। धर्म त्रिरत्न में से एक है।

निर्वाण

इसका शाब्दिक अर्थ है 'बुझा देना'। यह ऐसी आध्यात्मिक अवस्था है जिसमें सम्यक्-प्रज्ञा पर आधारित कुछ साधनाओं और ध्यान द्वारा सभी मानवी क्लेशों तथा तृष्णा को पूर्ण रूप से मिटाया जा सकता है। जिन्होंने इस अवस्था को प्राप्त किया, उन्हें बुद्ध कहते हैं। सिद्धार्थ गौतम ने इस अवस्था को प्राप्त किया और वे 35 वर्ष की आयु में बुद्ध बने। किन्तु अब माना जाता है कि मृत्यु के पश्चात् ही उन्हें ऐसे परिपूर्ण निर्वाण की प्राप्ति हो सकी, क्योंकि जब तक भौतिक शरीर रहता है तब तक उसमें कुछ मानवी क्लेश बचे रहते ही हैं।

पारमिता (जापानी 'हारामित्सु')

इसका शब्दार्थ है 'पार करके उस तट पर पहुँचना' अर्थात् विविध बौद्ध साधनाओं द्वरा भवसागर पार करके बुद्ध की पवित्र भूमि में पहुँचना। अक्सर माना जाता है कि नीचे की छः पारमिताओं की साधना द्वारा मनुष्य जीवन-मरण के भवसागर को पारकर निर्वाण के जगत में पहुँच सकता है। वे हैं दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा। वसंत और शरद ऋतु में मनाए जाने वाले परंपरागत जापानी 'हिगान' सप्ताह का इसी बौद्ध धारणा में से उद्भव हुआ है।

पाली

थेरवाद बौद्ध धर्म की भाषा। माना जाता है कि सबसे पुराने बौद्ध ।कारण संस्कृत और पाली में विशेष अन्तर नहीं है। संस्कृत में धर्म होता है, तो पाली में धम्म: संस्कृत निर्वाण का पाली में निब्बान हो जाता है। ('संस्कृत देखिए)

प्रज्ञा (जापानी में 'हान्न्या', 'चिए')

छ: पारमिताओं में से एक। वह मानसिक व्यापार जिसके द्वारा मनुष्य जीवन को यथार्थ रूप में देख सकता है तथा सत्य और असत्य में विवेक कर सकता है। जिसने इसे पूर्ण रूप से प्राप्त किया उसे बुद्ध कहते हैं। अत: सामान्य मानवी बुद्धि की तुलना में इसे अत्यंत निर्मल और प्रबुद्ध प्रजा कहना होगा।

बुद्ध (जापानी में 'बुत्सु,' 'बुद्दा')

सर्वप्रथम सिद्धार्थ गौतम (शाक्यमुनि) इस नाम से पुकारे गए, क्योंकि उन्होंने 35 वर्ष की आयु में लगभग 2500 वर्ष पहले, सम्यक्संबोधि प्राप्त की थी। सभी बौद्ध धर्मियों का अंतिम ध्येय, फिर वे किसी भी संप्रदाय का शाखा के हों, बुद्ध बनना ही है। इस स्थिति को प्राप्त करने के साध ना-मार्गों की भिन्नता के कारण बौद्ध धर्म भिन्न संप्रदायों में बँट गया है। महायान बौद्ध धर्म में, ऐतिहासिक शाक्यमुनि बुद्ध के अतिरिक्त अमिताभ (आमिदा), महावैरोचन (दाइनिचि), भैषज्यगुरु (याकुशी), सद्धर्मपुण्डरीक के अनाद्यन्नत शाक्यमुनि, जैसे अनेक बुद्धों को, साधारणत: बौद्ध उपदेशों के प्रतीकों के रूप में स्वीकार किया गया है। जापान में, अमिताभ बुद्ध में श्रद्धा रखने वाले सुखावती बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण, जिसके अनुसार भक्त मृत्यु के बाद सुखावती में जन्म लेकर बुद्ध बन जाता है, मरे हुए सभी लोगों को अकसर 'होतोके' अर्थात् बुद्ध कहने का रिवाज है।

बोधिसत्त्व (जापानी में 'बोसात्सु')

मूल में इस शब्द का प्रयोग बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्व शाक्यमुनि की साधना-काल की अवस्था के लिए किया जाता था। इसका अर्थ है निर्वाण की कामना करने वाला। महायान के उदय के साथ इसका व्यापक अर्थ किया जाने लगा और महायान बौद्ध धर्म के सभी अनुयायियों के लिए इसका प्रयोग होने लगा। उच्च भूमिका पर बुद्ध के निर्वाण की कामना करते हुए निम्न भूमिका पर सभी लोगों का बुद्ध के निर्वाण की ओर मार्गदर्शन करने का प्रयास करने वाले व्यक्तियों को बोधि सत्त्व कहा जाने लगा। इसके अतिरिक्त, बुद्ध की करुणा और प्रज्ञा के व्यापार का एक अंश वहन करते हुए, बुद्ध के सहायकों के रूप में सत्त्वों के दु:ख-कष्टों के अनुसार प्रकट होने वाले अवलोकितेश्वर (कान्नोन) अथवा क्षितिगर्भ (जिजो) जैसे अद्‌भुत सामर्थ्य धारण करने वाले उद्धारकत्ताओं को भी इस संज्ञा से पुकारा जाता है।

महायान

इतिहासक्रम में बौद्ध धर्म का दो मुख्य शाखाओं में विभाजन हो गया–महायान और थेरवाद (अथवा हीनयान)। महायान बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान आदि देशों में हुआ, जब कि थेरवाद का प्रचार म्यांमार, श्रीलंका, थाईलैंड आदि में। शाब्दिक अर्थ है 'बड़ा वाहन' जो कि जीवन-मरण के इस संसार में कष्ट पाने वाले सभी प्राणियों का स्वीकार कर सकता है और सब को बिना भेदभाव के, निर्वाण की ओर ले चल सकता है।

शून्यता (जापानी में 'कू')

इस सिद्धान्त के अनुसार सभी पदार्थों का न तो कोई स्वभाव है, न आत्मा: और यह बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। क्योंकि सभी पदार्थ हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न होते है, उनका कोई नित्य आत्मारूपी स्वभाव नहीं हो सकता। किन्तु हमें न तो आत्मदृष्टि से चिपके रहना चाहिए, न अनात्मदष्टि से। सभी प्राणी, मानवी या अमानवी, अन्योन्याश्रयी होते हैं। अत: किसी एक कल्पना या धारणा या वाद को चरम मानना मूर्खता है। यही महायान बौद्ध धर्म के प्रज्ञापारमितासूत्रों की मूलभूत अन्तर्धारा है।

संस्कृत

प्राचीन भारत की प्रतिष्ठित साहित्कि भाषा; भारोपिय भाषा-परिवार में एक। इसके दो रूप हैं–वैदिक और लौकिक। महायान परंपरा के सूत्र इस भाषा में लिखे गए थे, जिस की मिश्र शैली को बौद्ध, संकर-संस्कृत कहा जाता है।

संघ (जापानी 'क्योदान')

इसमें भिक्षु भिक्षुणी, उपास तथा उपासिकाओं का समावेश होता है। प्रारंभिक काल में केवल प्रव्रजित भिक्षु ओर भिक्षुणियों का ही इसमें समावेश होता था। बाद में, महायान के उदय के साथ, बोधिसत्त्व की अवस्था को अपना लक्ष्य बनाकर प्रत्यक्ष आचरण करने वाले लोगों के समूह हो, भिक्षु और उपासक के भेद को लाँघकर, सम्मिलित रूप से संघ कहा जाने लगा। बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों में से एक।

संसार (जपानी 'रिन्ने')

नरक, प्रेत, पशु, असुर, मनुष्य तथा देव योनियों में से गुजरते हुए, भूत, वर्तमान और भविष्य में जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे रहना। निर्वाण-प्राप्ति के बिना इस संसार-चक्र से मुक्ति नहीं मिलती। जो इससे मुक्त हुए है, उन्हें बुद्ध कहते हैं।

सूत्र

भगवान बुद्ध के लिपिबद्ध उपदेश। शाब्दिक अर्थ है 'धागा', जिससे धर्म अथवा विज्ञान के विपुल अध्ययन को संक्षेप में एकसूत्र में बाँधने का अर्थ प्रकट होता है।

बौद्ध धर्म प्रवर्तन तथा 'भगवान बुद्ध का उपदेश'

बौद्ध धर्म-प्रर्वतन-प्रतिष्ठान की चर्चा करते समय, पहले एक उद्योगपति श्री एहान नुमाता (मित्सुतोयो उत्पादन कंपनी के संस्थापक) के बारे में कहना आवश्यक है।

उन्होंने चालीस से भी अधिक वर्ष पहले सूक्ष्ममापन उपकरणों का उत्पादन करने के लिए वर्तमान कंपनी की स्थापना की। उनका दृढ़ विश्वास है कि किसी भी उद्योग की सफलता स्वर्ग, पृथ्वी एवं मनुष्य के बीच सामंजस्य पर आधारित है और मानवी मन की परिपूर्णता प्रजा, करुणा और साहस इन तीनों के संतुलित समन्वय से ही सम्भव है। इस विश्वास के साथ वे मापन उपकरणों के तांत्रिक सुधार तथा मानवी मन के विकास क लिए यथा संभव कर रहे हैं।

वे ऐसा मानते हैं कि विश्व में शांति की स्थापना मानवी मन की परिपूर्णता से ही हो सकती है, और मानवी मन को परिपूर्ण बनाने के उद्देश्य से प्रेरित धर्मों में बौद्ध धर्म एक है। इसलिए, अपने उद्योग मे संचालन के साथ-साथ, वे चालीस वष से भी अधिक समय से, बौद्ध संगीत के आध निकीकरण और प्रचार तथा बौद्ध चित्रकला और धर्मग्रंथो के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं।

दिसम्बर 1966 में उन्होंने अपनी निजी संपत्ति के दान से बौद्ध धर्म के प्रचार और साथ ही विश्वशांति के महत् उद्देश्य में सहायक हो सके ऐसे एक प्रतिष्ठान की स्थापना की। इस प्रकार बौद्ध धर्म प्रवर्तन-प्रतिष्ठान का एक सार्वजनिक संस्था के रूप में आरंभ हुआ।

भगवान बुद्ध के उपदेश के सर्वव्यापी प्रचार द्वारा उनकी महाप्रज्ञा और

करुणा के प्रकाश का लाभ और आनंद हर मानवी हृदय को प्राप्त हो सके, इसके लिए क्या करना होगा? बौद्ध धर्म-प्रवर्तन प्रतिष्ठान, अपने संस्थापक की इच्छा के अनुसार, इस समस्या का सतत समाधान ढूँढ़ता रहता है।

संक्षेप में, बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न करते रहना बौद्ध धर्म-प्रवर्तन प्रतिष्ठान का एकमेव कार्य है।

'भगवान बुद्ध का उपदेश' ग्रंथ का निर्माण तब हुआ जब हम अपने देश के बौद्ध धर्म के दीर्घ इतिहास की ओर मुड़कर देखने लगे; और हमारे ध्यान में आया कि बौद्ध संस्कृति का अभिमान करते हुए भी हमारे पास सच्चे अर्थ में जापानी बौद्ध धर्मग्रंथ कहा जा सके ऐसा एक भी ग्रंथ नहीं हैं। इस प्रकार के आत्म-परीक्षण में से इस ग्रंथ का निर्माण हुआ।

जो भी इस ग्रंथ को पढ़ेगा उसे उसमें से आध्यात्मिक पोषण मिलेगा। इसे चाहे अपनी मेज पर रखें अथवा जेब में लेकर चलें, जब भी और जहाँ भी इच्छा हो शाक्यमुनि के जीवन्त महान व्यक्तित्व का पावन स्पर्श प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि 'भगवान बुद्ध के उपदेश' का वर्तमान संस्करण, हम चाहते हैं उतना पूर्ण नहीं है, फिर भी अनेक व्यक्तियों के दीर्घकालीन परिश्रम और प्रयत्नों का फली है और हमें विश्वास है कि इसके द्वारा सामान्य लोगों की बौद्ध धर्म के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक परिचय ग्रंथ की आवश्यकता पूरी हो सकेगी, साथ ही वह उनके लिए व्यावहारिक मार्गदर्शक तथा नित्य प्रेरणा और सत्य का स्रोत भी बन सकेगा।

बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान की यह हार्दिक आकांक्षा है कि वह दिन शीघ्र ही आए जब यह ग्रंथ अधिक से अधिक घरों में पहुँचे और अधिक से अधिक लोग महान शास्ता के उपदेशामृत से लाभान्वित हों।

पाठकों की टिप्पणियों का सदा स्वागत है। कृपया कभी भी बिना संकोच के बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान को लिखें।